एग्री आर्टिकल्स
(कृषि लेखों के लिए ई-पत्रिका)
वर्ष: 03, अंक: 02 (मार्च-अप्रैल, 2023)
www.agriarticles.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
© एग्री आर्टिकल्स, आई. एस. एस. एन.: 2582-9882

चने की फसल के प्रमुख रोग एवं उनका प्रबंधन

(*आशीष कुमार शर्मा)
विद्यावाचस्पति शोधार्थी, शस्य विज्ञान विभाग, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर
*संवादी लेखक का ईमेल पता: trivediashish1233@gmail.com

दलहनी फसलों में चने का प्रमुख स्थान है। यह रबी की मुख्य फसल है। देश में 2020–21 में चने का उत्पादन 11.99 मिलियन टन और उत्पादकता 1217 किग्रा प्रति हेक्टेयर रही । देश में 2020–21 में चने का क्षेत्रफल 9.85 मिलियन हेक्टेयर था। राजस्थान में 2020–21 में चने का क्षेत्रफल 2.11 मिलियन हेक्टेयर, उत्पादन 2.32 मिलियन टन और उत्पादकता 1099 किग्रा प्रति हेक्टेयर रही। इसे साथ–साथ चने की फसल में रोगो का अधिक प्रकोप होने के कारण भी इसकी खेती में निरन्तर कमी आती जा रही है। मुख्य रूप से रोगो में उक्टा रोग, तना सड़न रोग, धूसर फफूँद, मूल विगलन व चाँदनी रोग बहुत नुकसान पहुचाते है। इन समस्याओं के निवारण के लिए चने की फसल में एकीकृत रोग प्रबन्धन अपनाकर अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है।

(1) चने का उक्टा रोग-इस रोग का मुख्य कारण *फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरियम* नामक कवक है। अधिकांश चना उत्पादक क्षेत्रों में इस रोग से काफी हानि होती है। रोग के लक्षण अंकुरित अवस्था के साथ–साथ पौधे के विकास के उन्नत चरण में भी देखे जा सकते हैं। पत्तियाँ पीली पड़ने लगती हैं और बाद में सूखने लगती हैं। पौधे भी पीले पड़ जाते हैं और अंत में सूख जाते हैं। जड़ें काली पड़ जाती हैं और अंततः सड़ जाती हैं।

चने का उक्टा रोग का नियंत्रण- चने को हल्की मिट्टी में लगभग 8–10 सें.मी. की गहराई पर बोने से उक्टा रोग का प्रकोप कम हो जाता है। चने का उक्टा रोग के अधिक प्रकोप वाले खेतों में तीन से चार वर्षो के लिए चने की खेती से बचना चाहिए। जहां तक हो चने की बुवाई अक्टूबर के तीसरे सप्ताह से पहले नहीं करनी चाहिए। कार्बेन्डाजिम 2.5 ग्राम प्रति किग्रा की दर से बीजोपचार करें। या कार्बोक्सिन+थीरम 1:2 का 3 ग्राम प्रति किग्रा की दर से बीजोपचार करें। सी–214, अवरोधी, उदय, बीजी–244 पूसा–362, जेजी–315, फुले जी–5 जैसी प्रतिरोधी किस्में उगाएं।

(2) तना सड़न रोग- यह रोग *स्क्लेरोटिनिया स्क्लेरोटोरियम* नामक कवक के कारण होता है। रोग जड़ों को छोड़कर सभी पौधों को प्रभावित करता है। प्रारंभिक अवस्था में संक्रमण जमीन के पास तने पर दिखाई देता है। प्रभावित पौधे पहले पीले, फिर भूरे और अंत में सूख जाते हैं। ध्यान से देखने पर प्रभावित तने पर भूरे रंग के धब्बे देखे जा सकते हैं जो बाद में इसे घेर लेते हैं। तने पर इन धब्बों पर कवक की सफेद कपास जैसी वृद्धि सख्त, काले रंग के स्क्लेरोशिया के साथ देखी जा सकती है।

तना सड़न रोग के नियंत्रण के उपाय -स्क्लेरोशिया से मुक्त स्वस्थ बीजों का ही प्रयोग करें। रोग प्रतिरोधी किस्में जैसे जी–543, गौरव, पूसा–261 आदि उगाएं।

कटाई के बाद रोगी पौधों को खेत में खड़ा नहीं होने देना चाहिए। बल्कि जलाकर नष्ट कर देना चाहिए। 10 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से ब्रासीकोल और कैप्टान जैसे फफूंदनाशकों के मिश्रण से मिट्टी का उपचार करें। ग्रीष्म ऋतु की गहरी जुताई करें।

(3) धूसर फफूँद (बोट्राइटिस ग्रेमोल्ड) रोग- यह चना की फसल का एक महत्वपूर्ण रोग हैं। इस रोग का संक्रमण सामान्यतः चना की फसल में फरवरी – मार्च के महीने में फूल लगने वाली अवस्था में होता है। यह रोग *बोट्राइटिस सिनेरिया* नामक कवक द्वारा फैलाता हैं। अनुकूल वातावरण होने पर यह रोग सामान्यतः पौधों में फूल आने एवं फसल के पूर्णरूप से विकसित होने पर फैलता है। वायुमण्डल एवं खेत में अधिक 70–90 प्रतिशत आर्द्रता तथा वायवीय तापमान 20–25 डिग्री सेल्सियस होने पर इस रोग को संक्रमण अधिक होता है। जब पौधे का उपरी भाग घना हो जाता है। इस रोग का संक्रमण सामान्यतः देश के तराई क्षेत्र बिहार का ताल क्षेत्रों में होता हैं। यह कवक बीज व फसल के अवरूषों में जीवित रहता है।

लक्षण- प्रारम्भिक अवस्था में पत्तियाँ तना, फूल जाती और मुलायम हो जाती है। पौधों की पत्तियों, डन्ठलों, शाखाओं व फूलों पर भूरें या काले भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। फूल झड़ जाते हैं एवं संक्रमित पौधे पर फलियाँ नही बनती है। शाखाओं और तनों पर जहाँ फफूँद के संक्रमण से भूरे या काले धब्बे पड़ जाते हैं, उस स्थान पर पौधा गल या सड़ जाता है। तन्तुओं के सड़ने के कारण टहनियाँ टूटकर गिर जाती है। रोगग्रस्त फूल झड़ जाते है संक्रमित भागों पर फफूँदी का रंग धीरे–धीरे मटमैला भूरा व सलेटी सा हो जाता है। अनुकूल वातावरण के चलते ये धब्बे कई सेंटीमीटर (10–30 मी.मी.) तक बढ़ जाते हैं जिसके कारण तना शाखा से आसानी से टूट जाता है। फलियों में दाने नही बनते हैं, एवं बनते भी है तो सिकुड़े हुए होते हैं। संक्रमित दानों पर भूरे व सफेद रंग के कवक तन्तु दिखाई देते हैं।

रोग के प्रबन्धन- इस रोग से प्रभावित क्षेत्रों में पंक्ति से पंक्ति के बीच की दूरी (45 से.मी.) को बढ़ाकर बुवाई करें ताकि फसल को अधिक धूप एवं प्रकाश प्राप्त हो । उर्वरकों की संस्तुत मात्रा में ही प्रयोग करें। रोग प्रतिरोधी प्रजातियों की बुवाई करें। बुवाई नवम्बर के दूसरे पखवारे में करे। कार्बेन्डाजिम 25 प्रतिशत व थिरम 50 प्रतिशत के मिश्रण से 2.5 ग्राम प्रति किग्रा की दर से बीज उपचारित करे।
यह रोग प्रायः नवजात पौधों में विशेषकर हल्की नमीसुक्त बलुई मिटटी में उत्पन्न होता है। और खड़ी फसल को काफी क्षति पहुचाता है। रोग के लक्षण दिखाई देते ही तुरन्त केप्टान या कार्बेडाजिम या मेंकोजेब का 2–3 बार एक सप्ताह के अन्तराल पर छिड़काव करे ताकि प्रकोप से बचा जा सकें।

(4) मूल विगलन रोग- यह रोग सभी दलहनी फसलों में लगता है। जैसा कि नाम से विदित है इस रोग में संक्रमित पौधे की जड़ें गल सड़ जाती हैं। इस रोग का प्रकोप देश के उत्तर–पूर्वी एवं उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र, मध्य क्षेत्र, दक्षिणी क्षेत्रों में होता हैं। इस रोग से ग्रसित पौधे पीले दिखायी पड़ते हैं तथा मुरझा कर मर जाते हैं। लक्षणों के आधार पर उकठा एवं मूल विगलन को पहचाना जा सकता है। संक्रमित पौधे आसानी से उखड़ जाये तो यह मूल विगलन लक्षण हो सकते है। उकठा ग्रसित पौधो में मूल तन्त्र नष्ट नहीं होता इसलिये इन पौधों को बल प्रयोग करके ही उखाड़ा जा सकता है।यह रोग सामान्यतः राइजोक्टोनिया कवक की दो प्रजातियाँ सोलेनि तथा बटाटिकोला द्वारा होता है। *राइजाक्टोनिया सोलेनि* द्वारा मूल विगलन को आर्द्र मूल विगलन कहते है व *राइजोक्टोनियां बटाटिकोला* संक्रमण द्वारा मूल विगलन को शुष्क मूल विगलन कहते हैं।

(क) शुष्क मूल विगलन रोग- शुष्क मूल विगलन रोग फसल की परवर्ती अवस्था में अधिक व्यापक होता है जिससे फसल को अधिक हानि होती है। मृदा नमी की कमी होने पर एवं दिन में वायु का तापमान अधिक होने पर इस बीमारी का गंभीर प्रकोप होता है। सामान्यतया इस बीमारी का प्रकोप पौधां में फूल आने एवं फलियाँ बनते समय होता है। बालुई मिटटी में यह रोग उग्र रूप में दिखयी देता है।

रोग के लक्षण- रोग की प्रारम्भिक अवस्था में पौधों की पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं तथा प्रभावित पौधे धीरे–धीरे सूख जाते हैं। रोगग्रस्त पौधों की शीर्ष पत्तिया झुक जाती है। मूल विगलन से ग्रसित पौधे सामान्यतः समूहों में दिखते हैं। इसके संक्रमण में जड़ें गल जाती हैं। रोगी पौधों में मूसला जड़ को

छोड़कर सभी जड़ें नष्ट हो जाती हैं और मूसला जड़ काली होकर सड़ने लगती हैं एवं आसानी से टूट जाती हैं। जड़ों के दिखाई देने वाले भाग और तनों के आन्तरिक भाग पर छोटे काले रंग की फफूँदी के बीजाणु देखे जा सकते हैं। पौधे को उखड़ने पर उसकी जड़े मिटटी में रह जाती है।

(ख) आर्द्र मूल विगलन रोग- *राइजोक्टोनिया सोलेनाई* द्वारा मूल विगलन को आर्द्र मूल विगलन कहते है क्योंकि इस रोग से संक्रमित पौधों की जड़ें गल जाती हैं।

रोग के लक्षण- इस रोग का संक्रमण सामान्यतः फसल की पौध अवस्था में अधिक होता है। संक्रमित पौधे आसानी से उखड़ जाते हैं तथा इनकी जड़ें छूने पर गीली प्रतीत होती है। इस रोग से ग्रसित पौधे पीले दिखाई पड़ते हैं तथा मुरझाकर मर जाते हैं।

रोग प्रबन्धन- समय से बुवाई व जल्दी पकने वाली प्रजातिया का चयन करने से गर्मी आने से पहले ही फसल पक जायेगी व रोग से बचाव किया जा सकता है। गर्मी (मई–जून) के महीनों में खेत की 2–3 बार गहरी जुताई करनी चाहिए। क्षेत्र के लिए अवरोधी प्रजातियों का बुवाई के लिए चयन करें। फसल चक्र अपनाएँ । एफ. वाइ. एम. के प्रयोग से रोग की तीव्रता को कम किया जा सकता है। ट्राइकोडर्मा पाउडर नामक जैव नियन्त्रण की 5 किलोग्राम मात्रा को 2.5 कुन्तल गोबर की खाद में मिलाकर प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई से पूर्व खेतों में मिला देने से इस रोग के शुरूआती विकास को रोका जा सकता है। सिंचाई करने से इस रोग को नियन्त्रित किया जा सकता है। फूल व फली आने के समय खेत में नमी की कमी न होने दे। केवल कार्बोडाजिन या कार्बोडाजिम को थिरम साथ मिलाकर बीज उपचार करना चाहिये। कार्बोडाजिम 2 ग्राम प्रति किग्रा की दर से बीज उपचारित करे।

(5) चाँदनी (एस्कोकाइट अंगमारी)- यह एक बीज जनित रोग है। रोग ग्रस्त पौधों के अवशेष रोग के फैलने का मुख्य कारण है। एस्कोकाइटा पत्ती धब्बा रोग *एस्कोकाइटा रैबी* नामक फफूँद द्वारा फैलती है। इस रोग का संक्रमण उत्तर भारत के उन स्थानों पर अधिक होता है जहाँ फसल के दौरान वातावरण आर्द्र हो या वर्षा के साथ–साथ तापमान कम हो। जैसे–जैसे पौधे की परिपक्वता बढती जाती है इस रोग की सम्भावना बढ़ती जाती है। उच्च आर्द्रता एवं कम तापमान की स्थिति में यह रोग फसल को क्षति पहुँचाता है। इस रोग का संक्रमण सामान्यतः फूल व फल लगने की अवस्था में अधिक होता है। एस्कोकाइट अंगमारी रोग का प्रकोप सामान्यतः देश के उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र व हिमालय की तलहटी क्षेत्रों में होता हैं। यदि दिन का तापमान 20 डिग्री सेल्सियस व रात का जापमान 10 डिग्री सेल्सियस के आस पास हो तो यह रोग तीव्र गति से फैलता है।

रोग के लक्षण- इस रोग के लक्षण पौधों के सभी वायवीय भागों पर दिखाई देते हैं। नवीन पत्तियों पर छोटे–छोटे गोल व भूरे रंग के धब्बे बनते हैं। ये धब्बे धीरे धीरे पौधें की शाखओ की पत्तिया पर दिखने लगते और कलियों तक फैल जाते है डंठलों एवं शाखाओं पर ये धब्बे आकार में लम्बे तथा गहरे भूरे रंग के होते हैं। अनुकूल वातावरण के चलते यह धब्बे बढ़ते रहते हैं, अन्ततः तना व शाखाओं को चारों ओर से घेर लेते हैं। धब्बे का आकार 3–4 सेमी. तक हो सकता है। रोग की उग्र अवस्था में पूरा पौधा ही सूख जाता है जिसके करण धब्बे के ऊपर वाला भाग मुरझा जाता है और अन्त में मर जाता है धब्बे के उपर काले रेग के बिन्दु देखे जा सकते है।

रोग प्रबन्धन- फसल चक्र अपनायें। तथा चने की फसल को बार बार न लगाये तीन चार साल के अन्तर पर फसल को लगाये संक्रमित पौधों के अवशेषों को एकत्र करके जला देना चाहिए। फसल की बुवाई नवम्बर माह के तृतीय सप्ताह तक करने से रोग कम लगता है। क्षेत्र आधारित अवरोधी प्रजातियों का बुवाई के लिए चयन करें। चाँदनी से प्रभावित या ग्रसित बीज को नहीं उगाएँ गर्मियां में गहरी जुताई करें एवं ग्रसित फसल अवशेष एवं अन्य घास को नष्ट कर देवें कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत एवं थिराम 50 प्रतिशत (1:3) 3.0 ग्राम की दर से अथवा ट्राइकोडर्मा 4.0 ग्राम प्रति किग्रा. बीज की दर से बीज शोधन करें। केप्टान या मेंकोजेब या क्लोरोथेलोनिल (2–3 ग्राम प्रति लिटर पानी) का 2–3 बार छिड़काव करने से रोग बिमारी को रोका जा सकता है।

(6) चने का रतआु या ज़ंग रोग- यह रोग *यूरोमाइसिस साइसर* एरीटिनी नामक कवक के कारण होता है। फरवरी की शुरुआत में इसके लक्षण दिखाई देने लगते हैं। पत्तियों की निचली सतह पर छोटे, गोल

से अंडाकार, हल्के या गहरे भूरे रंग के दाने बन जाते हैं। बाद में दाने काले पड़ जाते हैं। बाद में, ये दाने पत्तियों, डंठलों, टहनियों और फलियों की ऊपरी सतह पर दिखाई देते हैं। प्रभावित पत्तियाँ समय से पहले गिर जाती हैं और इसलिए उपज काफी कम हो जाती है।

चना में रतआ़ु रोग के नियंत्रण के उपाय - प्रथम लक्षण दिखाई देने पर फसल पर 0.2 प्रतिशत मैंकोजेब 75 डब्ल्यूपी का छिड़काव करें और इसके बाद 10 दिनों के अंतराल पर दो और छिड़काव करें। गौरव जैसी प्रतिरोधी किस्में ही लगाएं।